© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 05 | May 2018

# हिन्दी सिनेमा में दलित चित्रण का बदलता स्वरुप

**Manoj Kumar,** Research Scholar,

Dept. of Journalism & Mass Comm.
Maharshi Dayanand University, Rohtak

भूमिका : आज जिसे हम सिनेमा के नाम से जानते हैं वह बहुत कुछ रूप में रंगमंच, लोक नृत्यों, लोग नाट्यों से गुजरते हम तक पहुॅचने वाली एक ऐसी शैली है, जिसने आज यांत्रिकता के विभिन्न उपादानों का रूप पाकर कला का रूप धारण कर लिया है। इस तरह कला व रचना के अनेक रूपों को एक ही धरातल पर एकत्र करने का महान कार्य सिनेमा ने किया है। दृश्य माध्यम की एक प्रमुख विद्या के रूप में सिनेमा ने आज समाज के हर वर्ग तक अपनी गहरी पहुंच बनाई है। समाज का हर वर्ग हर स्तर पर इससे प्रभावित है। आधुनिक समय में सिनेमा जीवन का एक ऐसा हिस्सा है, जिसे हम जन समुदाय से अलग नहीं कर सकते। यह सिनेमा ही है जिसके माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों के रूप अलग–अगल दृश्यवंधों के माध्यम से हमारे सामने आते चले जाते है। इस पेपर में हम जानेगें की दलित चित्रण का पहले कैसा स्वरुप था और यह चित्रण वर्तमान में कैसे होता जा रहा है।

**हिन्दी सिनेमा का इतिहासः–**

दृश्य माध्यम की एक प्रमुख विधा के रूप में सिनेमा ने आज समाज के हर वर्ग तक अपनी गहरी पहुंच बनाई है। समाज का हर वर्ग हर स्तर पर इससे प्रभावित है। आधुनिक समय में सिनेमा जीवन का एक ऐसा हिस्सा है, जिसे हम जन समुदाय से अलग नहीं कर सकते। यह सिनेमा ही है जिसके माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों के रुप अलग–अलग दृश्यवंधों के माध्यम से हमारे सामने आते चले जाते है। यदि शुद्ध लोकप्रियता को लेकर चलें तो साहित्य, संगीत, नृत्य, नाटक, चित्रकला, जो हजारों वर्ष पुरानी कलाएं है, के मुकाबले सिनेमा अभी एक सदी से कुछ ही ज्यादा चित्रकला, जो हजारों वर्ष पुरानी कलाएं है, के मुकाबले सिनेमा अभी एक सदी से कुछ ही ज्यादा 70–80 वर्षों से अधिक नही हुए है, लेकिन उसने वह लोकप्रियाता हासिल की है, जो अन्य सारी कलाएॅ मिलकर भी प्राप्त नही कर सकेंगी।[1] हिन्दी सिनेमा के बदलते परिदृश्य से पूर्व विश्व सिनेमा के तकनीकी विकास पर दृष्टि डाल लेना भी प्रासंगिक होगा। सिनेमा के विकास में जैट्राप नामक यंत्र हे, जिसका निर्माण 1835 ई. के आस–पास हुआ था। यह एक ऐसा यंत्र था, जिसमें बहुत से चित्र एक चर्खी में पास–पास चिपका दिए जाते थे। इसके आगे एक और चरखी लगी रहती थी। जब जैट्राप को घुमाया जाता, तब देखने वाले को चित्रों में गीत होने का आभास होता था। सभंवतः इसी के वशीभूत हो मनुष्य नित्य नए अविष्कारों में जुटा रहा, ताकि वह पर्दे पर एक चलती फिरती यहां तक की बोलती हुई तस्वीर प्रस्तुत कर सकें।

1835 के आस–पास छायांकन के कैमरे का अविष्कार 'लुइस डूग्येरे' फ्रांस में किया। इसी कैमरे से प्ररेणा लेकर 1877 में सेन फ्रांसिस्कों के एक अग्रेंज फोटोग्राफर ईडवियर्ड माईब्रिज ने एक प्रयोग किया। उसने एक पंक्ति में पच्चीस कैमरे लगाकर एक भागते हुए घोड़े के चित्र उतारे थे। उन सभी चित्रों को जब एक साथ रखकर देखा गया तो ऐसा आभास हुआ कि जैसे घोड़ा दौड़ रहा हो। सिनेमा की गति तथा कैमरे के दिशा में यह एक अद्भूत प्रयोग था। माईब्रिज के बाद सिनेमा के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अविष्कार टामस एल्वा एडीसन का है। उसने 3 अक्टुबर 1889 को अमेरिका के न्यूजर्सी नगर के वेस्ट आरेंज क्षेत्र में स्थित अपनी प्रयोगशाला 'किनेमेस्टोस्कोप' नामक यंत्र का सफल एवं ऐतिहासिक प्रदर्शन किया। इस प्रयोग ने संयुक्त राज्य अमेरिका एवं फ्रांस के लोगों को सिनेमा के प्रति और उत्सुक कर दिया। फ्रांस के ही ल्यूमीए बन्धुओं ने सिनेमा के अविष्कारों को घर–घर तक पहुॅचाने का महत्वपूर्ण काम किया। इन्हीं ल्यूमीए बंधुओं ने

भारत में सर्वप्रथम सात जुलाई 1896 को वाटसंस होटल के सहयोग से कुछ चलचित्रों का प्रदर्शन किया। इन चलचित्रों को देखने वाले दर्शक विज्ञान के इस चमत्कार को देखकर हैरान रह गए। अविष्कारों की विकसित होती हुई यह परम्परा भारत में भी आकर्षण का कारण बनी, जिसके अन्तर्गत भारत की सबसे पहली फिल्म ''राजा हरिशचन्द्र'' हमारे सामने आई और यहीं से भारतीय और हिन्दी सिनेमा का परिदृश्य बदलता चला गया। हिन्दी सिनेमा के इतिहास को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले भाग में उन फिल्मों को लिया जा सकता है जो मूक थी। दूसरे भाग में सवाक फिल्मों को लिया जा सकता हैः–

1– मूक सिनेमा युग– (1991 से 1930 तक)

2– सवाक सिनेमा युग– (1931 से आज तक)

''राजा हरिश्चन्द्र'' को ही भारत की पहली फिल्म माना गया है। यह मूक फिल्म थी। परन्तु कई समीक्षकों ने इसे भारत की प्रथम फिल्म के रूप में स्वीकार नही किया है। लेकिन कुल मिलाकर जो तथ्य दावें प्राप्त हुए है उनसे यही सिद्ध होता है कि ''राजा हरिश्चन्द्र'' पहली भारतीय फिल्मी थी। इसे हिन्दी फिल्म इसलिए माना गया क्योंकि इसके शीर्षक को दर्शाने के लिए हिदीं का प्रयोग किया गया। 1917 तक दादा साहब फाल्के अकेले फिल्म निर्माता थे, जिन्होंने 23 से भी अधिक मूक फिल्मों का निर्माण किया जिनमें ''कृष्ण जन्म'', ''सावित्री'' ''लंकादहन'', ''भस्मासुर मोहिनी'' आदि है। बंगाल में भीजे.एफ, मदन का मदन थयेर्टस' काफी प्रगति कर रहा था। इस थियेटर ने 1917 में पहली फिल्म ''नल दमयन्ती' बनाई। दक्षिण भारत में पी.वनकैया द्वारा निर्मित पहली फिल्म ''भीष्म प्रतिज्ञा'' थी। 1913 से 1925 तक पौराणिक कथाओं पर अधिक मूक फिल्में बनी। 1925 के बाद भारत के इतिहास को लेकर ज्यादातर फिल्में बनी जिनमें ''पृथ्वी बल्लभ'', ''अनार कली'', ''उदय काल'', चितौड़ की पदमिनि'' आदि इस समय ऐतिहासिक मूक फिल्में बनी थी।[2]

हिन्दी सिनेमा की पहली भारतीय और हिन्दी सवाक/बोलती फिल्म ''आलमआरा'' थी। इस फिल्म का प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को मैजस्टिक सिनेमा मुम्बई में किया गया। इसके बाद मदन थियेटर ने ''शीरी फरहाद'' तथा ''लैला मजनू'' नामक फिल्में बनाई। इस दौरान मोहन भवनानी के निर्देशन में एक ओर लोकप्रिय फिल्म ''नुरजहां'' बनी इस फिल्म की अंग्रेजी एवं फारसी भाषा में भी रूपान्तरित किया गया था। इन फिल्मों के बाद हिन्दी सिनेमा का विकास होता चला गया। सुविधा की दृष्टि से हिन्दी की बोलती/ सवाक फिल्मों की विकास यात्रा को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैः–

1– स्वतंत्रता से पूर्व बनी हिन्दी – (1930 से 1947 तक)

2– स्वतंत्रता के बाद बनी हिन्दी फिल्में– (1947 से आज तक)

दूसरा विश्वयुद्ध गांधी जी की वैचारिकता आजादी की लड़ाई, ब्रिटिश सरकार के भारतीयों पर जुल्म और गांव में फैली छुआछूत जात–पात के बंधन, 1947 से हुए साम्प्रदायिक दंगे आदि घटनाओं का प्रभाव भी तत्कालीन हिन्दी सिनेमा पर पड़ता चला गया।[3]

सामाजिक धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुए सिनेमा वर्तमान में सबसे सशक्त एवं रचनात्मक माध्यम बनकर उभरा है। भारत में प्रति वर्ष लगभग 200 हिन्दी भाषी फिल्मों का निर्माण किया जाता है जिनमें दलित पात्रों को हमेशा मुख्य पात्र के मार्गदर्शन में किरदार निभाते हुए दिखाया जाता है एवं उनकी जाति को भी एक बीमारी की तरह दिखाया जाता है। उन्हें अशिक्षित, अभद्र एवं हिंसक दिखाया जाता है जैसा कि 'लगान'' फिल्म में 'कचरा' नामक पात्र को दिखाया गया है। इस प्रकार भारतीय हिन्दी सिनेमा अपना 100 वर्षों से उपर का सुनहरा दौर पूरा कर चुका है।[4] हालांकि स्वतंत्रता से पहले ही इस प्रकार की भूमिका वाली फिल्म का निर्माण ''अछूत कन्या'' (1936) नामक फिल्म से शुरु हो चुका था, जिसके निर्देशक फ्रान्ज ऑस्टन थे। इस फिल्म की नायिका एक अछूत जाति से सम्बंध रखने वाली लड़की है और फिल्म का नायक एक ब्राहम्ण लड़का है, जो नायिका से प्यार करने लगता है। लेकिन दोनों जातिवाद की भेड़ियों और गांव वालों के तानों से डरकर अलग रहने को मजबूर होते है। इसके बाद 1959 में बिमल

राय द्वारा निर्देशित ''सूजाता'' फिल्म प्रदर्शित हुई जिसमें लिंगभेद एवं जातिभेद नामक दोनों बिन्दूओं पर जबरदस्त प्रकाश डाला गया है। फिल्म में नारीवाद दृष्टिकोण को बहुत अच्छे तरीके से पेश किया गया है, जिसमें दबी–कुचली नारी अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई गई है। जिसे पुरूष जाति ने हमेशा दबा कर रखा अर्थात उस पर शासन किया है।[5] 1964 में बलराज साहनी द्वारा अभिनित फिल्म ''पुनर्मिलन'' आई जिसमें मुख्य पात्र एक डॉक्टर की भूमिका में अपनी जाति दबा कर उच्च जाति के परिवार में रहता है, लेकिन वास्तव में वह अनुसूचित जाति से होता है। 1964 में ही अभिनेता एवं निर्देशक चन्द्र शेखर की फिल्म ''छा–छा–छा'' आई जिसमें उन्होंने अनुसूचित जाति से सम्बन्धित एक पश्चिम संगीत डांसर का किरदार निभाया है। इसी कड़ी में श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित ''अंकुर'' फिल्म 1974 में प्रदर्शित हुई जिसमें नारीवाद एवं जातिवादी दृष्टिकोण को बहुत प्रभावी तरीके से पेश किया गया है। इस फिल्म की नायिका 'लक्ष्मी' (शबाना आजमी) निम्न जाति से सम्बन्ध रखती है। प्रसिद्ध निर्माता निर्देशक सत्यजीत राय ने 1984 में ''सदगति'' फिल्म का निर्माण किया। आजादी से पहले भारत मे जात–पात की कड़ी बेडियां, उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग का शोषण, इस फिल्म के माध्यम से सामने आया है। यह फिल्म उच्च वर्ग में घर कर रही उस मानसिकता का वर्णन है जहॉ मनुष्य को कुत्ते से भी बदतर समझा जाता है। फिल्म में खोखले ब्रह्मणत्व के विकृत रुप को बिल्कूल सही तरीके से पेश किया गया है। 1985 में जे.पी दत्ता द्वारा निर्देशित ''गुलामी'' फिल्म प्रदर्शित हुई, जिसमें दबे–कुचले लोगों को सामन्तवादी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। 1975 में श्याम बेनेगल की ''निशान्त'' एवं 1976 में हरिकेश मुखर्जी की ''अर्जुन–पंडित और 1984 में गोतम घोष की ''पार फिल्म में भी दबे–कुचले वर्ग एवं जातिवाद की पीड़ा को सफलतापूर्वक दर्शाया गया है। 1995 में बनी ''बैंडिट क्वीन'' फिल्म जो शेखर कपूर द्वारा निर्देशित की गई थी जिसमें एक दलित महिला के साथ हुए शोषण को दर्शाया गया है। यह फिल्म फूलन देवी जो एक डाकूओं के गिरोह की मुखिया है के वास्तविक जीवन पर आधारित है। फिल्म में उच्च जाति के लोगों द्वारा उसका शारीरिक शोषण किया जाता है। अभिनेत्री नंदिता दास द्वारा अभिनित फिल्म ''भवंडर 2000 में प्रदर्शित हुई, जो जगमोहन मुंदडा द्वारा निर्देशित थी। इस फिल्म में भी गैंगरेप की शिकार निम्न जाति की महिला को न्यायालय एवं पुलिस की कार्यप्रणाली से संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। 2001 में निर्देशक आशुतोष गोवरीकर द्वारा निर्देशित ''लगान'' फिल्म में भी दलित चरित्र को हर तरीके से दयनीय हालात में दिखाया गया है और उसे नाम भी 'कचरा' दिया गया है। 2006 में विशाल भारद्वाज द्वारा निर्देशित ''ओमकारा'' में भी बिना विचारों वाली भारतीय रूढ़ीवादी परम्परा को इसी प्रकार दिखाया गया है।

भारत में सिनेमा की शुरुआत से लेकर 2006 तक जितनी भी हिन्दी फिल्मों का निर्माण हुआ है। उनमें एकाध फिल्म को छोड़कर इस दौरान बनी किसी भी फिल्म में निम्न जाति या दबे–कुचले वर्ग के पात्र को नायक की भूमिका में फिल्माया नहीं गया है। लेकिन समय के बदलाव के साथ–साथ फिल्म निर्माताओं की सोच में भी बदलाव आया और भारत में एक नए सिनेमा की शुरुआत विधु विनोद चौपड़ा द्वारा निर्देशित फिल्म ''एकलव्य'' से जो 2007 में प्रदर्शित हुई। इस फिल्म के प्रदर्शित होने के बाद हम कह सकते हैं कि हिन्दी सिनेमा में एक दलित हीरों का उदय हुआ है। निर्देशक ने इस धारणा को तोड़ा है कि एक दलित पात्र सिनेमा की मुख्याधारा में मुख्या भूमिका नही निभा सकता है। ''एकलव्य'' फिल्म में दलित चरित्र पन्नालाल चौहार, पुलिस ऑफिसर की भूमिका में दिखाया गया है और उसकी समान्तवाद–विरोधी सोच को भी दर्शाया गया है। इस फिल्म के बाइद 2010 में प्रकाश झा की ''राजनीति'' फिल्म आई, जिसमें भारत के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को स्पष्ट रूप से दिखाने का प्रयास किया गया। लेकिन इसमें भी दलित नेता सूरज (अजय देवगन) अन्त में उच्च जाति के नेताओं के आगे झुकते हुए दिखाया जाता है। इसके बाद प्रकाश झा द्वारा ही निर्देशित फिल्म ''आरक्षण'' 2011 में प्रदर्शित हुई जिसमें फिल्म का मुख्य पात्र अर्थात नायक दलित है जो होनहार, शिक्षित, ईमानदार, मेहनती एंव अपने स्वंय का इतिहास बहुत अच्छी तरह से जानने वाला है और

हमेशा आत्म–विश्वास से भरा रहता हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी सिनेमा के जाने माने निर्देशक प्रकाश झा एवं विधु विनोद चौपड़ा ने एक सकारात्मक शुरुआत की हैं, जिससे प्रेरणा लेकर अन्य फिल्म निर्माता भी दलित एवं दबे–कुचले पात्रों को मुख्य भूमिका में लेकर फिल्म निर्माण कर सकेंगें।[6]2012 में फिल्म ''शुद्रा द राईजिंग'' आई जिसके निर्देशक संजीव जायसवाल थे। फिल्म में शूद्रों अर्थात दलितों पर प्राचीन काल में हुए अत्याचारों एवं शोषण को विस्तार से दिखाया गया है। फिल्म में जातिवाद एवं ब्राह्मणवाद पर भी प्रहार किया गया है।[7] ब्रहमात्मज ने ''सिनेमा समकालीन सिनेमा' में इस बात पर बल दिया है कि '' फिल्म निर्माण सिर्फ औद्योगिक उत्पाद नही है, यह सजृनात्मक उत्पाद है। इस सजृन के लिए आवश्यक है कि भारतीय विशिष्टता और सार्वभौमिक महत्व के विषयों को लेकर फिल्में बनाई जाए। फिल्मों में 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का दर्शन चरितार्थ हो।''[8] देवआनन्द की सोच की दिशा भी सही थीं उनका कहना था कि फिल्म जगत में धर्म, जाति, प्रान्त, भाषा किसी भी आधार पर कोई भेदभाव नही होता। सबका सम्पूर्ण सम्यक सहयोग एक सुनिश्चित लक्ष्य अर्थात एक अच्छी फिल्म बनाने के प्रति केन्द्रित होता है। अगर यही गुण राष्ट्रीय स्तर पर विकसित हो सके तो देश की तस्वीर बदल सकती है।

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम कह सकते है कि हिंदी सिनेमा के जाने माने निर्देशक प्रकाश झा एवं विधु विनोद चौपड़ा ने एक सकारात्मक शुरुआत की है, जिससे प्रेरणा लेकर अन्य फिल्म निर्माता भी दलित एवं दबे–कुचले पात्रों को मुख्य भूमिका में लेकर फिल्म निर्माण कर सकेंगें। 2012 में फिल्म ''शुद्रा द राईजिंग'' आई जिसके निर्देशक संजीव जायसवाल थे। फिल्म में शुद्रों अर्थात दलितों पर ''सिनेमा समकालीन सिनेमा'' एवं शोषण को विस्तार से दिखाया गया है। ब्रहमात्मज ने ''सिनेमा समकालीन सिनेमा'' में इस बात पर बल दिया है कि फिल्म निर्माण सिर्फ औद्योगिक उत्पाद नहीं है, यह सजृनात्मक उत्पाद हैं। इस सृजन के लिए आवश्यक है कि भारतीय विशिष्टता और सार्वभौमिक महत्व के विषयों को लेकर फिल्में बनाई जाये। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय हिंदी सिनेमा के समय–समय पर दलित चरित्र को लेकर काफी फिल्में बनाई हैं जिससे दलित समाज के उपर होने वाले अत्यचारों और दलित समाज के समय–समय हो रहे बदलाव को लेकर भी फिल्मकारों ने अपनी फिल्मों के माध्यमों उनकों समाज के सामने प्रकाश में लाया गया है। जिससे दलितों के हो रहे बदलाव को देखकर समस्त दलित समाज जो बदलता नही वह भी उनके अंदर बदल सके।

1ण खेर विष्णू, (2010) सिनेमा पढ़ने के तरीके, प्रवीन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 9
2ण कुमार हरीश, (1998), 'सिनेमा और साहित्य', संजय प्रकाशन, दिल्ली पृ. 52–56
3ण कुमार हरीश, 'सिनेमा और साहित्य' पृ. 56–59
4. htpp://www.thestar.com/life/2007/06/22/22/the_role_of_indiansunt ouchables_in_film.html
5. htpp://feministsindia.com/tag/dalit_cinema/
6. htpp://www.timescreast.com/culture/rise_if_the_dalit_hero_6099
7. htpp://www.facebook.com/pages/SHUDRA-the-rising/10255824696607
8. czgekRet vt;] ^flusek ledkyhu flusek* ok.kh izdk'ku] u;h fnYyh i`-733
9. frokjh fouksn] ¼2007½ fQYe i=dkfjrk* ok.kh izdk'ku] u;h fnYyh i`- 47
10. htpp://baboonlogic.com/2007/03/10/eklvy_the_royal_guard
11. http://en.wikipedia.org/wiki/arrasshan